नागार्जुन और चन्द्रकिशोर जायसवाल के उपन्यासों में गाँव का तुलनात्मक अध्ययन

पवन कुमार ठाकुर

शोधार्थी

हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश :–

नागार्जुन और चन्द्रकिशोर जायसवाल ग्रामीण जीवन के प्रतिष्ठित रचनाकार हैं। इनकी रचनाएँ मुख्यतः गाँव की वास्तविकताओं, वहाँ के संघर्षों और जीवन-मूल्यों पर आधारित हैं। दोनों ही लेखक अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के यथार्थ को अत्यंत मार्मिक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं। नागार्जुन और चन्द्रकिशोर जायसवाल के उपन्यास पढ़ते समय यह अनुभव होता है कि प्रस्तुत कथाएँ हमारे अपने समाज, हमारे गाँव और हमारे परिवार की ही कहानी हैं। यह प्रत्यक्ष देखा हुआ, भोगा हुआ और अनुभव किया हुआ यथार्थ है, जिसे लेखक ने अपनी कलम के माध्यम से जीवंत कर दिया है। इस कारण पाठक जब इन रचनाओं को पढ़ते हैं, तो उन्हें वही संवेदना और अनुभव होता है जो स्वयं लेखक ने अनुभव किया था। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में गाँव के सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश, आर्थिक शोषण आदि जैसी प्रवृत्तियों का बारीकी से चित्रण किया है। वहीं चन्द्रकिशोर जायसवाल ने ग्रामीण जीवन की सामाजिक, पारिवारिक रिश्तों, जातिगत भेदभाव और बदलते समय के प्रभावों को अत्यंत सजीव रूप में अभिव्यक्त किया है। इन दोनों रचनाकारों की लेखनी में गाँव की अनेक समस्याएँ-गरीबी, अशिक्षा, जातिगत भेदभाव आदि समस्याएँ स्पष्ट रूप से सामने आती हैं, जिनसे गाँव का आम जन लगातार जूझता रहता है। इस प्रकार नागार्जुन और चन्द्रकिशोर जायसवाल के उपन्यास भारतीय ग्रामीण जीवन का दस्तावेज़ बनकर उभरते हैं।

बीज शब्द :– उपन्यास, समाज, गाँव, परिवार, अनुभव, गरीबी, अशिक्षा, समस्याएँ, भारतीय, दस्तावेज़, यातायात, प्रकृति।

प्रस्तावना–

भारत गाँवों का देश कहा जाता है। शहर की तुलना में गाँव का जीवन भिन्न होता है। गाँव के लोग मुख्यतः कृषि, मजदूरी और छोटे-मोटे व्यापार पर निर्भर रहते हैं। विकास की दृष्टि से गाँव आज भी शहरों से काफी पीछे हैं। यहाँ रोजगार के अवसर कम हैं; यदि रोजगार मिलता भी है तो उचित मजदूरी नहीं दिया जाता और ऊपर से शोषित वर्ग उनका शोषण भी करता है। आज भी गाँव के अधिकतर लोग बेरोजगार बैठे रहते हैं क्योंकि उन्हें समय पर मजदूरी नहीं मिल पाती। इसी कारण गरीबी लगातार बढ़ती जा रही है। पैसे की कमी के कारण गाँव के लोग अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा नहीं दे पाते। सरकारी शिक्षा व्यवस्था की

स्थिति भी दयनीय है और अधिकांश ग्रामीण परिवार अपने बच्चों को निजी विद्यालयों में भेजने की सामर्थ्य नहीं रखते। इसके विपरीत शहरों में रोजगार के अवसर अपेक्षाकृत अधिक हैं, जिससे लोग अपने बच्चों को पढ़ा-लिखा लेते हैं। शहरों में महिलाएँ भी रोजगार प्राप्त कर लेती हैं और अपना जीवन अपेक्षाकृत ठीक-ठाक ढंग से गुजार पाती हैं।

गाँव की विशेषताएँ–

गाँव की अपनी विशिष्ट पहचान होती है। यहाँ अधिकतर घर कच्चे होते हैं और पक्के घरों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। गाँव के लोग प्रकृति पर अधिक निर्भर रहते हैं और उनकी आजीविका मुख्य रूप से कृषि पर आधारित होती है। कई छोटे-छोटे टोले मिलकर एक गाँव का निर्माण करते हैं। गाँव का जीवन सामान्यतः सरल और सहज होता है। शहर की तुलना में गाँव की जनसंख्या कम होती है और यहाँ के लोग सामाजिक रूप से एक-दूसरे पर अधिक आश्रित रहते हैं। ग्रामीण समाज में सामूहिकता की भावना मजबूत होती है, लोग मिल-जुलकर रहते हैं और एक-दूसरे की मदद करते हैं। पंचायत व्यवस्था यहाँ का महत्वपूर्ण आधार है। गाँवों में अब भी अशिक्षा अधिक है और बहुत-से लोग पुरानी परंपराओं, अंधविश्वासों और बाह्याडंबरों से ग्रसित हैं। शिक्षा व्यवस्था संतोषजनक नहीं होने के कारण बच्चों को उचित शिक्षा नहीं मिल पाती। यातायात और आधुनिक सुविधाओं की भी यहाँ कमी रहती है। इसके बावजूद गाँव के लोग मेहनती, परिश्रमी और ईमानदार होते हैं। वे सादगी और सामूहिक परिवार की परंपरा को महत्व देते हैं। गाँव की मिट्टी, खेत-खलिहान और प्राकृतिक वातावरण वहाँ के जीवन को विशेष बनाते हैं। यही कारण है कि गाँव आज भी भारतीय संस्कृति की जड़ों और परंपराओं का सजीव प्रतीक माने जाते हैं।

हिंदी साहित्य के दुनिया में गाँव से जुड़े नागार्जुन, चन्द्रकिशोर जायसवाल, फणीश्वरनाथ रेणु, ज्योतिरीश्वर ठाकुर, विद्यापति, ललितेश्वर मल्लिक, मायानंद मिश्र, शालिग्राम, राजकमल चौधरी, रामधारी सिंह 'दिवाकर', इंदुशेखर, सुरेंद्र स्निग्ध आदि साहित्यकार हैं। गाँव से जुड़े अनेक साहित्यकारों की रचनाएँ अधिक प्रचलित नहीं हो सकीं, इसलिए वे अधिकांश पाठकों तक नहीं पहुँच पाईं। उनकी रचनाओं के महत्व के अनुसार उन्हें उचित सम्मान भी नहीं मिला। कारण चाहे जो भी रहा हो, इसी वजह से वे साहित्य जगत में चर्चित नहीं हो पाए। परंतु अब उनकी लेखनी केवल गाँव तक सीमित नहीं रह गई है। धीरे-धीरे उनकी रचनाएँ अधिक पाठकों, आलोचकों और समीक्षकों तक पहुँच रही हैं और उन्हें साहित्यिक प्रसिद्धि के साथ सम्मान भी मिलने लगा है। जैसे-जैसे दबे हुए साहित्यकारों की रचनाएँ सामने आ रही हैं, वैसे-वैसे गाँव की अनेक समस्याएँ भी दुनिया के सामने उजागर हो रही हैं।

आज गाँव में कई तरह की समस्याएँ देखने को मिलती हैं, जैसे-सड़क और यातायात की कमी, शिक्षा का अभाव, अंधविश्वास, गरीबों का शोषण और अन्य अनेक असुविधाएँ। इन्हीं समस्याओं को साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। महेश दर्पण के शब्दों में-"नागार्जुन के उपन्यासों को सामाजिक यथार्थ के अंकन के रूप में व्याख्यायित किया है आलोचक ने। उनके सभी महत्त्वपूर्ण उपन्यास इस आकलन में

समाहित हैं। आलोचक की मान्यता है कि नागार्जुन के पास अनुभव और संघर्ष से संपृक्त व्यापक जीवन-दृष्टि है। वह ग्राम्य जीवन की सच्चाइयों को तो उद्घाटित करते ही है, शोषण करने वालों के मुखौटों को भी बेनकाब करते हैं। वह प्रगतिशील मूल्यों के पालक तो हैं ही, परंपरान्वेषी भी हैं। उनका कहना है कि वस्तुतः आँचलिकता के तत्त्व नागार्जुन में रेणु से अधिक हैं।"[1]

नागार्जुन का प्रसिद्ध उपन्यास **'वरुण के बेटे'** भी इसी विषय पर आधारित है। इसमें मलाही गाँव की समस्याओं को उठाया गया है। नागार्जुन ने इस गाँव का चित्रण बहुत बारीकी से किया है। यहाँ के अधिकतर लोग बेरोजगार थे और मछली पकड़कर अपना जीवन यापन करते थे। "मलाही-गोढियारी में मछुओं के तीस-पैंतीस परिवार थे। खानेवाले मूंगों की तादाद तेजी से बढ़ रही थी। भोला की श्रेणी के संपन्न-सुखी गृहपति इनमें दो ही तीन थे। अधिकतर मछुए खुरखुन की हैसियत थे। वे पास-पड़ोस के इलाको में पाँच-सात कोस तक और कभी-कभी दस-पंद्रह कोस तक मछलियाँ पकड़ने निकल जाते थे। इधर के जितने भी पोखर थे, जितनी भी तालियों थी, जितनी भी नदियाँ और झीले थी, पानी का जहाँ भी जमाव-टिकाव था सारा का सारा उनका शिकार गाह था।"[2] गाँव में गढ़-पोखर नामक एक बड़ा जलाशय था। लेकिन जमींदार ने उसे खरीदकर उस पर अपना अधिकार जमा लिया। मछुआरे इसका विरोध करते थे, क्योंकि उनके जीवन का सहारा वही जलाशय था। इस प्रकार जमींदार और मछुआरों-मजदूरों के बीच संघर्ष की स्थिति बनी। नागार्जुन ने इस संघर्ष को बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसी तरह चन्द्रकिशोर जायसवाल जी के उपन्यासों में भी गाँव की समस्याएँ मिलती हैं। उनका प्रसिद्ध उपन्यास **'जीबछ का बेटा बुद्ध'** इसका उदाहरण है। इसमें चकबेलवा गाँव की कहानी है, जहाँ अधिकतर लोग अशिक्षित थे। उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं दीपक जो गाँव के लोगों को शिक्षित करने के लिए एक पुस्तकालय खोलता है, लेकिन उसके पिता जीबछ बाबू अपने स्वार्थ के कारण उसमें चोरी करवा देते हैं।

जीबछ बाबू एक राजनेता थे। वे जनता का शोषण करके अपने बेटे दीपक के लिए ज़मीन-जायदाद और धन-दौलत इकट्ठा करते थे। जनता के सामने वे नेक और भले व्यक्ति का चेहरा दिखाते, लेकिन पर्दे के पीछे उनका असली स्वार्थी और भ्रष्ट रुप सामने आता था। इस तरह वे दिखावा करते हुए जनता को धोखा देते थे। जायसवाल जी इस दोहरे चरित्र को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- "जनता को मसीहा चाहिये, दधीचि चाहिये, तो फिर क्या करे राजनेता-जननेता? उनके लिए जरुरी है भेस बदलकर रहना।"[3] इससे स्पष्ट होता है कि नेता अपने स्वार्थ और सत्ता की लालसा के लिए अलग-अलग रुप धारण करते हैं। बाहर से वे जनता के

[1] डॉ. वरुण कुमार तिवारी- "कोसी के हिंदी शब्द-शिल्पी" (प्रथम खण्ड), पृष्ठ संख्या-8, प्रकाशक: अद्विक पब्लिकेशन, 41 हसनपुर, आई. पी. एक्सटेंशन पटपड़गंज, दिल्ली 110092

[2] नागार्जुन- 'वरुण के बेटे', पृष्ठ संख्या - 20, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2003

[3] चन्द्रकिशोर जायसवाल- 'जीबछ का बेटा बुद्ध' पृष्ठ संख्या-83, प्रकाशक- कोसी प्रकाशन-गृह, बुद्ध कॉलोनी, दुजरा रोड पटना-80000, प्रथम संस्करण 1990.

हितैषी दिखाई देते हैं, लेकिन भीतर से उनका लक्ष्य केवल अपनी संपत्ति और शक्ति बढ़ाना होता है। यही कारण है कि जीबछ बाबू जैसे नेता समाज के लिए समस्या बन जाते हैं। दूसरी ओर, उनका बेटा दीपक अपने पिता से अलग सोच रखता है। वह शिक्षा और समाजसेवा में विश्वास करता है और चाहता है कि गाँव के लोग जागरूक बनें।

नागार्जुन का प्रसिद्ध उपन्यास **'बाबा बटेसरनाथ'** है। यह उपन्यास अंग्रेजों द्वारा किए गए शोषण और अत्याचार की घटनाओं का पर्दाफाश करता है तथा यह दर्शाता है कि आज़ादी से लेकर अब तक किस प्रकार बदलाव हुए हैं। इसमें ईस्ट इंडिया कंपनी के समय से आए परिवर्तनों और महात्मा गाँधी के असहयोग आंदोलन के प्रभावों का भी मार्मिक चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में रूपउली गाँव की कथा है। उस गाँव में बाबा बटेसरनाथ नामक एक बरगद का वृक्ष है, जिसे उपन्यास के प्रमुख पात्र जैकिसुन के परदादा ने लगाया था। उस वृक्ष की सेवा-भावना मनुष्य की भाँति की जाती थी। एक दिन जैकिसुन उस पेड़ के नीचे बैठ जाता है और बैठते ही उसे गहरी नींद आ जाती है। उसी समय बाबा बटेसरनाथ और जैकिसुन के बीच संवाद होने लगता है। बाबा बटेसरनाथ जैकिसुन को अपने रोपण से लेकर अब तक की सारी घटनाएँ क्रमबद्ध रूप से बताते हैं। नागार्जुन लिखते हैं-"मेरी आयु एक सौ तीन वर्षों की हो गई है। हमारी जाति की वनस्पतियों के लिए यह कोई अधिक आयु थोड़े है बेटा? बिल्कुल नहीं! पंडित को पंडितों को कहते सुना है कि कलिकाल सबकी आयु पी गया है। पी गया होगा कलिकाल चर-अचर सबकी आयु, परंतु बरगद की उम्र अब भी सैकड़ों साल की हुआ करती है।"[4]..."ढाई तीन महीने में तो मैं दो पत्ते का हो गया। बीज से निकला तो सफेद धागे का जौ-भर का छोर-सा था। यों तो दरार क्या थी, वह मेरे लिए पूरी जेल थी।"[5] इसी तरह बाबा बटेसरनाथ आगे की सारी घटनाएँ बताते हैं। चन्द्रकिशोर जायसवाल भी ग्रामीण समस्याओं का चित्रण अत्यंत मार्मिक ढंग से करते हैं। जायसवाल जी का 'मणिग्राम' एक महत्वपूर्ण हिंदी उपन्यास है, जो सामाजिक यथार्थ और भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं को गहराई से उजागर करता है। उपन्यास का केंद्र बिंदु एक गाँव 'मणिग्राम' है। जो अपने आप में एक प्रतीकात्मक स्थान है, जहाँ भारतीय ग्रामीण समाज की समस्त जटिलताएँ और विविधताएँ संजोई गई हैं।

'मणिग्राम' सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। मधुरन के ब्राह्मणों द्वारा आयोजित मेले में अपमानजनक प्रसाद वितरण से असंतोष फैला, जिसके विरोध में बरसौनी के चन्द्रमोहन मिश्रा, मणिग्राम के मायानन्द चौधरी और हरीराही के माँगन सिंह ने अपने-अपने गाँवों में देवस्थान स्थापित किए। **मणिग्राम** में लक्ष्मीथान बना और वहाँ का मेला प्रसिद्ध हो गया। मणिग्राम में एक

[4] नागार्जुन- 'बाबा बटेसरनाथ' पृष्ठ संख्या **-15,** राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. **1-** बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली, पहला संस्करण: **1961,** वर्तमान संस्करण **2012**

[5] नागार्जुन- 'बाबा बटेसरनाथ' पृष्ठ संख्या **-17,** राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. **1-** बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली, पहला संस्करण: **1961,** वर्तमान संस्करण **2012**

धूर्त ब्राह्मण अनन्त झा और उनके बेटे मेघन झा का उल्लेख है, जिन्होंने अपनी चतुराई से संपत्ति अर्जित की। मेघन झा के पुत्र शंकर को ऊपरी कमाई वाली सरकारी नौकरी मिल गई, जिससे उनका परिवार संपन्न हो गया। फरसादी झा ने मेघन झा को लक्ष्मीपूजा समिति बनाने के लिए प्रेरित किया, जिससे मनीग्राम में विभाजन की स्थिति उत्पन्न हो गई। ब्राह्मण और सोलकन समुदायों में विभाजन हो गया, सोलकन समुदाय के भीतर यादवों ने अपनी संख्या और प्रभाव को मजबूत करने के लिए हनुमान मंदिर बनाने का निर्णय लिया।

पूरे मणिग्राम बर्वाद होने की स्थिति में आ गया मायानन्द को लगा कि यह गाँव अभ नहीं बचने वाला है उसके बाद बालकिशोर यादव से मिलते हैं और उनसे बोलते हैं "कि गाँव की बात करने के लिए गाँव में सबसे लायक आदमी तुम ही हो। मुझे तुम्हारे हर क्रिया-कलाप की जानकारी मिलती रही है। मैं जान रहा हूँ कि यह गाँव तुम्हारी चिन्ता में शामिल है। दारोगा से मन्दिर बनवाने की गुंजाइश नहीं देखी, तो तुमने मस्जिद बनवा दी। मैं तुम्हारे चरित्र से प्रभावित हूँ। तुमने भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई लड़ी, जबकि अपने स्वार्थ के चलते बंटी यादव ने भ्रष्टाचार को प्रश्रय दिया। मुझे इस बात से बहुत प्रसन्नता हुई कि तुम मुसहरों के साथ हो गये हो और उन्हें भागने देना नहीं चाहते। तुमने हनुमान मन्दिर के लिए जो समिति बनायी, उसमें पूरा गाँव समाया हुआ है। तुम्हारे हाथ में मेरा यह मणिग्राम सुरक्षित है। अब यह भूल जाओ कि जिस रास्ते पर हम इस पूरे गाँव को हाँक रहे थे वह सही था या गलत। अब तुम रास्ता बताओ, हम उस पर चलेंगे।"... जाति हमें तोड़-तोड़कर अलग कर रही है, बालकिशोर, गाँव हम सब को जोड़कर रखेगा।"[6] हालांकि, समय के साथ, इन आंतरिक संघर्षों को मयानन्द चौधरी और बालकिशोर यादव के बीच बातचीत से सुलझा लिया गया और मणिग्राम एकजुट हो गया। हनुमान मंदिर के साथ-साथ एक पुस्तकालय के निर्माण का निर्णय लिया गया, जो कि गाँव के लोगों के बीच शिक्षा और सामुदायिक भावना को बढ़ावा देने के लिए एक प्रतीक के रूप में देखा गया।

'दुखमोचन' नागार्जुन का प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें एक पिछड़े गाँव टमका-कोइली की कहानी प्रस्तुत की गई है। टमका-कोइली "कोई छोटा गाँव नहीं था, पाँच हजार से ऊपर की जनसंख्यावाली एक भारी बस्ती थी। दरअसल यह छोटी-छोटी कई बस्तियों का एक समूह था। बीच-बीच में खेत और बाग फैले हुए थे। उत्तर पूरब की तरफ से कन्नी काटकर एक नदी निकल गई थी।"[7] इस गाँव के लोग पुरानी परंपराओं के नियमों से ग्रस्त थे। वे रूढ़ियों और अंधविश्वासों में विश्वास रखते थे। किंतु इस उपन्यास का नायक दुखमोचन इन परंपराओं और अंधविश्वासों को नकारते हुए एक स्वच्छ और प्रगतिशील समाज की स्थापना के लिए संघर्ष करता है। वही चन्द्रकिशोर जायसवाल का प्रसिद्ध उपन्यास **'गवाह गैर हाजिर'** वृद्ध व्यक्ति

[6] चन्द्रकिशोर जायसवाल- 'मनीग्राम',पृष्ठ संख्या- **219,** प्रकाशक : रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया, प्रथम संस्करण : सन् **2019**

[7] नागार्जुन- 'दुखमोचन',पृष्ठ संख्या-**8,** राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.**1**-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली

की मानसिक स्थिति और पारिवारिक संबंधों का मार्मिक चित्रण करता है। इस उपन्यास का नायक किशुन साह, अपने बेटे रामशरण और बहू के व्यवहार से परेशान होकर हमेशा के लिए वरुणेश्वर स्थान जाने का निर्णय लेता है। किंतु बाल-बच्चों, घर-द्वार, मित्र-मंडली और सगे-संबंधियों के मोह-माया के कारण वह रास्ते से ही वापस लौट आता है।

इस उपन्यास में कठौतिया गाँव का वर्णन किया गया है। इस गाँव के लोग अनेक सुविधाओं से वंचित हैं। यहाँ सड़क आदि का अभाव है और विकास भी बहुत कम हुआ है। किंतु कुछ समय पूर्व से इस गाँव में दुकानों की संख्या बढ़ गई है, जिसके कारण लोग अब इसे कठौतिया बाज़ार कहने लगे हैं। इस गाँव में वही व्यक्ति प्रतिष्ठित माना जाता है जिसके पास अधिक भूमि, पक्का कुआँ और बाग-बगीचा आदि हों। गाँव में बिंदेश्वरी मंडल का बगीचा, सगरी भगत के खेत और पवित्तर राय की भंगवारी प्रसिद्ध हैं। गाँव के पूर्व दिशा में श्री सगरी भगत की चौदह बीघे जमीन है। वहाँ के लोग दिशा-मैदान (शौच) के लिए उसी खेत में जाया करते थे। भगत जी ने उन्हें रोकने का प्रयास भी किया, परंतु रोक नहीं सके। आखिर दिशा-मैदान के लिए लोग जाते तो जाते कहाँ? उसी जमीन के पूरब दिशा में एक कुआँ है। "सुबह में यहाँ बूढ़ों की जमात बैठती है। सामने एक कुआँ है। नित्य क्रिया से निबटकर बूढ़े यहीं हाथ-मुँह धोते हैं और दतवन करते हुए गप्पे लड़ाते हैं। पानी खींचने के लिए बाँस में रस्सी से बाँधकर जो बाल्टी रखी हुई है वह उस कुएँ से अधिक पुरानी लगती है। बाल्टी वहाँ पहुँच गई होगी, तब कुआँ खोदा गया होगा। कुएँ से ऊपर आता हुआ पानी विभिन्न भागों से बाल्टी को छोड़कर पुनः अन्दर की ओर भागने लगता है। पर किसी भी बूढ़े को इस बात का मलाल नहीं। बाल्टी को वे इतनी तीव्र गति से कुएँ से बाहर निकालते हैं कि किसी भी तरह बाल्टी का कम-से-कम आधा पानी तो उनकी कैद में आ ही जाता है। कुछ बूढ़ों के लिए इतना व्यायाम ही काफी सेहतमंद साबित हुआ है।"[8] वहीं पर सामने एक नीम का पेड़ है। सुबह-सुबह उस पेड़ पर कोई न कोई बच्चा चढ़ा होता है और नीचे कुछ बूढ़े लोग दतवन के लिए खड़े होते हैं। हर बूढ़े को एक दतवन नहीं बल्कि एक मुट्ठी भर दतवन चाहिए। इस प्रकार जायसवाल जी गांव का चित्रण करते हैं।

'रतिनाथ की चाची' नागार्जुन का प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें शुभंकरपुर और उसके आस-पास की स्थितियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में रूढ़िवादी परंपराओं का विरोध किया गया है। इसके प्रमुख पात्र गौरी, वैजनाथ मिश्र और जयनाथ हैं। गौरी का विवाह एक ब्राह्मण परिवार में वैजनाथ मिश्र से होता है, जो दमे की बीमारी से पीड़ित रहते हैं। उनसे गौरी को दो संतानें होती हैं- बेटा उमानाथ और बेटी प्रतिभामा। आगे चलकर गौरी विधवा हो जाती है। कुछ समय पश्चात जयनाथ का गौरी से अवैध संबंध स्थापित हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप गौरी गर्भवती हो जाती है। समाज इसे स्वीकार नहीं करता। इस पीड़ा और सामाजिक तिरस्कार का चित्रण नागार्जुन ने अत्यंत मार्मिक ढंग से किया है। दूसरी ओर

[8] चन्द्रकिशोर जायसवाल- 'गवाह गैरहाजिर', पृष्ठ संख्या-20, सरस्वती प्रेस, इलाहबाद (1981) बाद में रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया- सहिबावाद, संस्करण :2008

चन्द्रकिशोर जायसवाल भी अपनी रचनाओं में ग्रामीण समस्याओं को उठाते हैं। उनका प्रसिद्ध उपन्यास **'दुःखग्राम'** है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र मयंक है, जिसका जन्म असामान्य रूप से होता है। मयंक मानसिक रूप से विकलांग था। उसकी माता वीणा और नानी उसे समाप्त कर देना चाहती थीं। पिता भी मयंक को लेकर चिंतित रहते थे। किंतु मयंक के दादी और दादा (डॉ. अमरनाथ भगत) उसका साथ देते हैं। मयंक को परिवार से लेकर समाज तक अपमान सहना पड़ता है, परंतु उसके दादा उसे न्याय दिलाने के लिए पूर्णिया शहर से गाँव ले आते हैं और ऐसे समाज की कल्पना करते हैं, जहाँ मयंक जैसे बच्चों को अपमान न सहना पड़े और उन्हें न्याय मिल सके। दादा को यह दुनिया वास्तव में एक दुःखग्राम प्रतीत होती है। जायसवाल जी ने इस ग्रामीण समस्या का चित्रण अत्यंत मार्मिक ढंग से विश्व के सामने प्रस्तुत किया है।

'बलचनमा' नागार्जुन का प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें शोषक और शोषित वर्ग के बीच के संघर्ष का मार्मिक चित्रण किया गया है। बलचनमा के पिता (ललुआ) ज़मींदार के यहाँ बेगारी करते थे। एक दिन उन्होंने ज़मींदार के यहाँ से किसुनभोग आम तोड़ लिया, जिसके कारण उन्हें इतना पीटा गया कि उनकी मृत्यु हो गई। मजबूरीवश बलचनमा का बेटा उसी ज़मींदार के यहाँ भैंस चराने लगा। उसे भरपेट भोजन भी नहीं मिलता था और यदि कभी मिलता भी था तो वह जूठन होता था। इतना ही नहीं, ज़मींदार बलचनमा की बहन के साथ भी गलत व्यवहार करने की कोशिश करता था। इसी कारण बलचनमा विरोध करता था। विरोध के चलते उसे मार भी पड़ती थी और उस पर झूठे आरोप लगाकर दंडित भी किया जाता था। जब बलचनमा कांग्रेस नेता फूलदेव बाबू से अपनी बहन की शिकायत करता, तो मदद मिलने के बजाय उसे माफी माँगने की सलाह दी जाती। दूसरी ओर चन्द्रकिशोर जायसवाल के उपन्यासों में भी ग्रामीण जीवन का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है। उनका प्रसिद्ध उपन्यास **'माँ'** है। इसमें कलबन गाँव की कथा है, जो लखनलाल नामक व्यक्ति के जीवन पर आधारित है।

व्यक्ति पूरी जिंदगी अपने परिवार के लिए कितने कष्ट सहता है और कितनी विपरीत परिस्थितियों में जीवन बिताता है। लेकिन जीवन के अंतिम समय में धन-दौलत, कोठा-मटारी, कुछ भी काम नहीं आते। उनके संगी-साथी भी इस दुनिया से विदा हो चुके होते हैं। अंतिम समय में उन्हें अकेली और उदास ज़िंदगी ही जीनी पड़ती है। मृत्यु से पहले वे अपनी माँ को याद करते हैं। जायसवाल जी लिखते हैं- "मैं सोच में पड़ गया, माँ, इस तरह पूरी जिंदगी कैसे काटूँगा मैं? वहाँ आदमी कहाँ रहा, ताँगा का घोड़ा हो गया था माँ"[9] आगे लिखते हैं- "तुम यह भी मत सोचो, माँ, कि बेटों-बहूओं ने कभी कुछ बुरा किया, बुरा कहा, तो दुख और गुस्से में मैंने उसका बुरा चाहा। नहीं माँ, नहीं। वे मुझे कितना भी बुरा मान लें और मैं उसके लिए कितना भी बुरा हो जाऊँ, तब भी मैं अपने बेटों और उसके बेटों को जीवन, संपत्ति, विद्या, संपत्ति, स्वर्ग, मोक्ष, राज्य और सभी सुख

[9] चन्द्रकिशोर जायसवाल- 'माँ', पृष्ठ सं.- 56, रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया साहिबाबाद, प्रथम संस्करण 2008.

पाने के आशीर्वाद देता रहूंगा।"[10] इस प्रकार जायसवाल जी ग्रामीण जीवन की समस्याओं का अत्यंत मार्मिक चित्रण करते हैं।

निष्कर्ष :– नागार्जुन और चन्द्रकिशोर जायसवाल दोनों ही साहित्यकारों ने अपने-अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के यथार्थ को सजीव रूप से प्रस्तुत किया है। नागार्जुन ने गाँव की आर्थिक दुर्दशा, शोषण, संघर्ष, जमींदारी प्रथा, जातिगत असमानता और स्वतंत्रता आंदोलन के प्रभाव को चित्रित किया है। उनके पात्र अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाते हैं और सामाजिक परिवर्तन की ओर बढ़ते हैं। चन्द्रकिशोर जायसवाल ने ग्रामीण समाज की गहरी संवेदनाओं को उकेरा है। उनके उपन्यासों में शिक्षा की कमी, राजनीति का भ्रष्ट रूप, पारिवारिक विघटन, बुजुर्गों की उपेक्षा, स्त्री-पुरुष की समस्याएँ और सामाजिक विसंगतियाँ विशेष रूप से सामने आती हैं। उनके पात्रों का संघर्ष मुख्यतः सामाजिक और पारिवारिक संदर्भों से जुड़ा होता है। इस प्रकार नागार्जुन ने गाँव के सामूहिक जीवन और राजनीतिक-सामाजिक संघर्ष को उजागर किया, जबकि जायसवाल ने ग्रामीण जीवन के पारिवारिक, सांस्कृतिक और मानवीय पहलुओं को गहराई से प्रस्तुत किया। दोनों लेखकों की रचनाएँ गाँव को केवल भौगोलिक इकाई न मानकर जीवन, संघर्ष और संवेदना की धरती के रूप में सामने लाती हैं। इसलिए दोनों उपन्यासकार गाँव के जीवन के सच्चे दस्तावेज़कार सिद्ध होते हैं, जिनकी रचनाएँ आज भी ग्रामीण समाज की समस्याओं पर गंभीर चिंतन के लिए प्रेरित करती हैं।

[10] चन्द्रकिशोर जायसवाल- 'माँ', पृष्ठ सं.- 72, रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया साहिबाबाद, प्रथम संस्करण 2008.